



आष्टांग योग

विषय:- योगा एजुकेशन
द्वितीय सेमेस्टर

(डॉ० एन० के० बाजपेयी)

असि० प्रो०

बी०पी०एड० विभाग

अष्टांग योग की परिभाषा

महर्षि पतंजलि को योग का पिता भी कहा जाता है | ईशा से 200 वर्ष पूर्व ही महर्षि पतंजलि ने योग के आठों अंगों को मिलाकर योगसूत्र का निर्माण कर दिया था | अष्टांग योग में योग के आठ अंग आते हैं |

(यम,नियम,आसन,प्राणायाम,प्रत्याहार,धारणा,ध्यान और समाधी) | आप इसे इस परिभाषा तरह भी समझ सकते हैं| कि योग के आठों आयामों को अपनाकर मोक्ष को प्राप्त होना ही अष्टांग योग है |

अष्टांग योग के अंग

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि॥

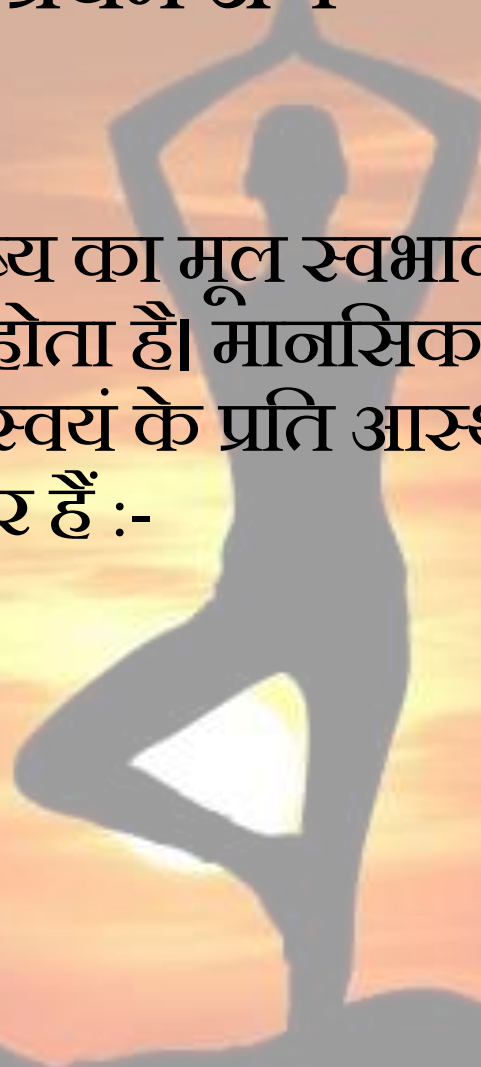
अष्टांग योग के 8 अंग हैं और हर एक अंग का अपना कार्य और महत्व है जिसे अपना कर व्यक्ति पूर्ण रूप से साक्षात् मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है | इस योग में अलग – अलग आयामों को एक साथ अपनाकर अभ्यास किया जाता है जो पूर्ण रूप से फलित होते हैं | इन 8 अंगों की दो भूमिकाएँ होती हैं |

1. **बहिरंग** – यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार इन पांच अंगों को बहिरंग कहते हैं क्योंकि इनकी विशेषता शरीर के बाहर की क्रियाओं से ही सम्बंधित होती है |
2. **अन्तरंग** – धारणा, ध्यान और समाधि इन तीनों अंगों को अन्तरंग कहते हैं क्योंकि इनका सम्बन्ध केवल अंतःकरण से ही होता है | इसी कारण इन अंगों को अन्तरंग कहा जाता है |

1.'यम' योग का प्रथम अंग

निश्चित ही यह मनुष्य का मूल स्वभाव भी है। यम से मन मजबूत और पवित्र होता है। मानसिक शक्ति बढ़ती है। इससे संकल्प और स्वयं के प्रति आस्था का विकास होता है | इसके पांच प्रकार हैं :-

1. अहिंसा
2. सत्य
3. अस्तेय
4. ब्रह्मचर्य
5. अपरिग्रह



1. अहिंसा

अहिंसा का सामान्य अर्थ है 'हिंसा न करना'। इसका व्यापक अर्थ है - किसी भी प्राणी को तन, मन, कर्म, वचन और वाणी से कोई नुकसान न पहुँचाना। मन में किसी का अहित न सोचना, किसी को कटुवाणी आदि के द्वार भी नुकसान न देना तथा कर्म से भी किसी भी अवस्था में, किसी भी प्राणी कि हिंसा न करना, यह अहिंसा है। जैन धर्म एवं हिन्दू धर्म में अहिंसा का बहुत महत्व है। जैन धर्म के मूलमंत्र में ही अहिंसा परमो धर्मः (अहिंसा परम (सबसे बड़ा) धर्म कहा गया है। आधुनिक काल में महात्मा गांधी ने भारत की आजादी के लिये जो आन्दोलन चलाया वह काफी सीमा तक अहिंसात्मक था।

2. सत्य

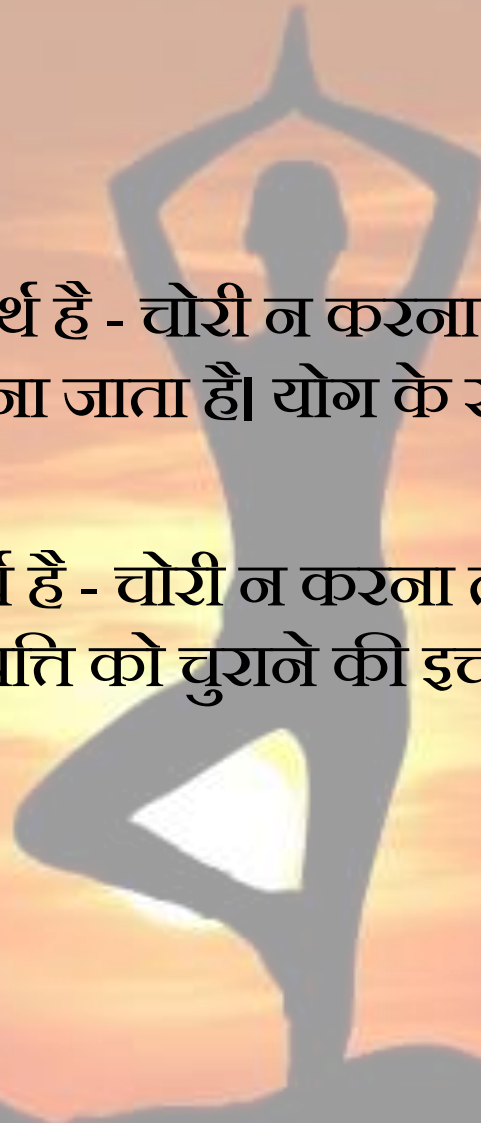
सत्य इस संसार में बड़ी शक्ति हैं | सत्य के बारे में व्यवहारिक बात यह है कि सत्य परेशान हो सकता है | मगर पराजित नहीं, भारत में कई सत्यवादी विभूतियाँ हुईं जिनकी दुहाई आज भी दी जाती हैं जैसे राजा हरिश्चन्द्र, सत्यवीर तेजाजी महाराज आदि | इन्होंने अपने जीवन में यह संकल्प कर लिया था कि भले ही जो कुछ हो जाए वे सत्य की राह को नहीं छोड़ेंगे |

सत्य का शाब्दिक अर्थ होता है सते हितम् यानि सभी का कल्याण, इस कल्याण की भावना को हृदय में बसाकर ही व्यक्ति सत्य बोल सकता है | एक सत्यवादी व्यक्ति की पहचान यह है कि वह वर्तमान, भूत, भविष्य के बारे में विचार किये बिना अपनी बात पर दृढ़ रहता है | मानव स्वभाव की सत्य के प्रति आगाध श्रद्धा झूठ के प्रति गुरसे के भाव आते हैं |

3. अस्तेय

अस्तेय का शाब्दिक अर्थ है - चोरी न करना। हिन्दू धर्म तथा जैन धर्म में यह एक गुण माना जाता है। योग के सन्दर्भ में अस्तेय, पाँच यमों में से एक है।

अस्तेय का व्यापक अर्थ है - चोरी न करना तथा मन, वचन और कर्म से किसी दूसरे की सम्पत्ति को चुराने की इच्छा न करना ।

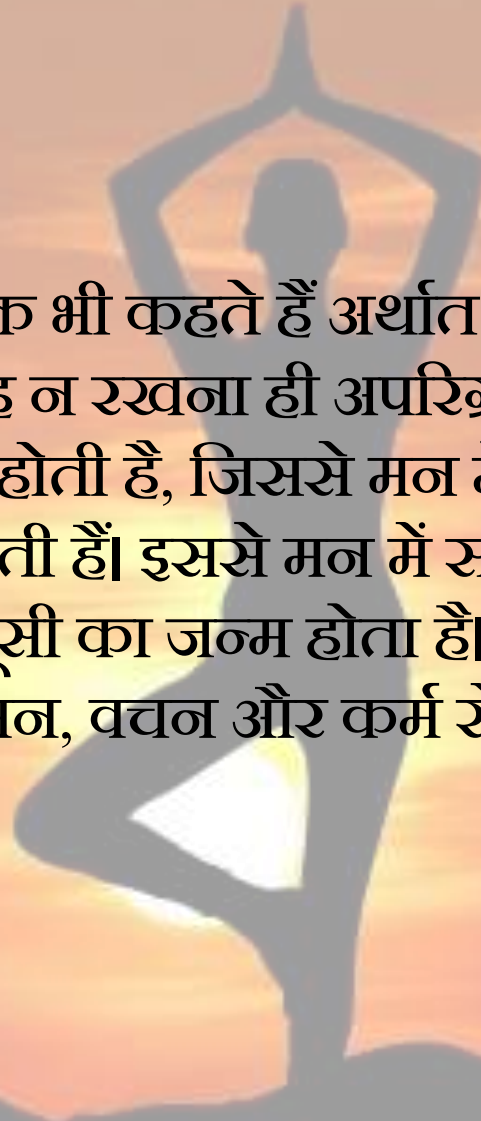


4. ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य योग के आधारभूत स्तंभों में से एक है | ब्रह्मचर्य का अर्थ है सात्विक जीवन बिताना, शुभ विचारों से अपने वीर्य का रक्षण करना, भगवान का ध्यान करना और विद्या ग्रहण करना | यह वैदिक धर्म वर्णाश्रम का पहला आश्रम भी है, जिसके अनुसार यह 0-25 वर्ष तक की आयु का होता है और जिस आश्रम का पालन करते हुए विद्यार्थियों को भावी जीवन के लिये शिक्षा ग्रहण करनी होती है | ब्रह्मचर्य से असाधारण ज्ञान पाया जा सकता है वैदिक काल और वर्तमान समय के सभी ऋषियों ने इसका अनुसरण करने को कहा है |

5. अपरिग्रह

अपरिग्रह इसे अनासक्ति भी कहते हैं अर्थात किसी भी विचार, वस्तु और व्यक्ति के प्रति मोह न रखना ही अपरिग्रह है। कुछ लोगों में संग्रह करने की प्रवृत्ति होती है, जिससे मन में भी व्यर्थ की बातें या चीजें संग्रहित होने लगती हैं। इससे मन में संकुचन पैदा होता है। इससे कृपणता या कंजूसी का जन्म होता है। आसक्ति से ही आदतों का जन्म भी होता है | मन, वचन और कर्म से इस प्रवृत्ति को त्यागना ही अपरिग्रही होना है |



2. नियम

नियम मनुष्य को कर्तव्य परायण बनाने तथा जीवन को सुव्यवस्थित करते हेतु नियमों का विधान किया गया है | इनके अंतर्गत शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान का समावेश है | शौच में बाह्य तथा आन्तर दोनों ही प्रकार की शुद्धि समाविष्ट है |

ये पाँच निम्नलिखित हैं |

- (1) शौच - शरीर और मन की शुद्धि |
- (2) संतोष - संतुष्ट और प्रसन्न रहना |
- (3) तप - स्वयं से अनुशासित रहना |
- (4) स्वाध्याय - आत्मचिंतन करना |
- (5) ईश्वर-प्रणिधान - इश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण, पूर्ण श्रद्धा होनी चाहिए |

3. आसन

- स्थिरसुखमासनम्॥ पातंजल योग सूत्र 2/46
- जो स्थिर और सुखदायी हो वह, आसन है।
- हमें किसी भी प्रकार की साधना करने के लिए आसन के अभ्यास की आवश्यकता होती है। आसन में स्थिरता व सुख होने पर ही हम प्राणायाम आदि क्रिया सम्पन्न कर सकते हैं। अतः स्वाभाविक व प्राथमिक आवश्यकता साधना के लिए “आसन” की होती है। आसन से संबंधित विभिन्न व्याख्याकारों ने जो व्याख्या की है वह इस प्रकार है-
- तेजबिंदु उपनिषद् में आसनों को इस प्रकार परिभाषित किया गया है-
- सुखनैव भवेत् यश्मिन् जस्रं ब्रह्मचिंतनम् ।
- जिस स्थिति में बैठकर सुखपूर्वक निरंतर परमब्रह्म का चिंतन किया जा सके, उसे ही आसन समझना चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने आसनों को इस प्रकार बताया है-
- समं कायषिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
- सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिषञ्चानवलोकयन्॥ श्रीमद्भगवद्गीता 6/13
- कमर से गले तक का भाग, सिर और गले को सीधे अचल धारण करके तथा दिशाओं को न देख केवल अपनी नासिका के अग्र भाग को देखते हुए स्थिर होकर बैठना आसन है। व्यास भाष्य के अनुसार- पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, स्वस्तिकासन, दण्डासन, ये सब स्थिरसुख आसन कहे जाते हैं।

4. प्राणायाम

प्राणायाम योग का एक प्रमुख अंग है | हठयोग एवं अष्टांग योग दोनों में इसे स्थान दिया गया है | महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग में चौथे स्थान पर प्राणायाम रखा है | प्राणायाम नियंत्रित श्वसनिक क्रियाओं से संबंधित है। स्थूल रूप में यह जीवनधारक शक्ति अर्थात् प्राण से संबंधित है | प्राण का अर्थ श्वास, श्वसन, जीवन, ओजस्विता, ऊर्जा या शक्ति है | 'आयाम' का अर्थ फैलाव, विस्तार, प्रसार, लंबाई, चौड़ाई, विनियमन बढ़ाना, अवरोध या नियंत्रण है। इस प्रकार प्राणायाम का अर्थ श्वास का दीर्घीकरण और फिर उसका नियंत्रण है |

प्राणायाम के भेद

महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम के मुख्यतः तीन भेद बताए हैं :-

बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः॥ पातंजल योग सूत्र
2/50

अर्थात् (यह प्राणायाम) बाह्य वृत्ति, आभ्यान्तर वृत्ति और स्तम्भ वृत्ति वाला (तीन प्रकार का) होता है। देश, काल और संख्या के द्वारा देखा जाता हुआ विशाल एवं हल्का होता है। उपरोक्त तथ्यों को हम निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट कर सकते हैं-

1-रेचक:- प्राणवायु को नासिका द्वारा बाहर निकालकर बाहर ही जितने समय तक सरलतापूर्वक रोक जा सके, उतने समय तक रोके रहना 'रेचक' कहा गया है।

2-पूरक:- प्राणवायु को अंदर खींचकर अर्थात् श्वास लेकर जितने समय आसानी से रूक सके, रोके रहना 'पूरक' कहा गया है।

3-कुम्भक:- श्वास प्रश्वास दोनों गतियों के अभाव से प्राण को जहाँ-तहाँ रोक देना कुम्भक प्राणायाम है। प्राणवायु सहजतापूर्वक बाहर निष्कासित हुआ हो अर्थात् जहाँ भी हो वहीं उसकी गति को सहजता से रोक देना कुम्भक प्राणायाम है।

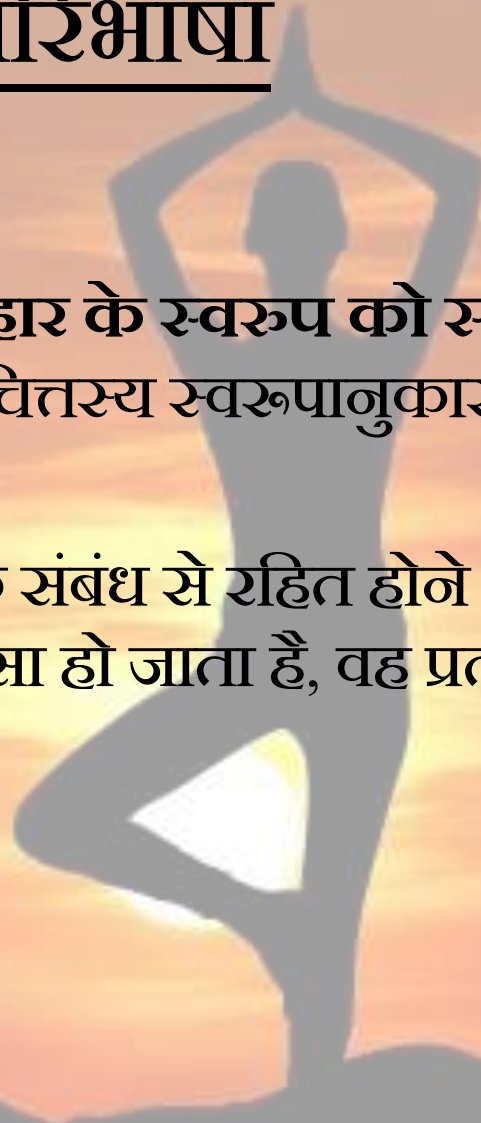
5.प्रत्याहार

प्रत्याहार दो शब्दों 'प्रति' और 'आहार' से मिलकर बना है। 'प्रति' का अर्थ है विपरीत अर्थात् इन्द्रियों के जो अपने विषय हैं उनको उनके विषय या आहार के विपरीत कर देना प्रत्याहार है। इन्द्रियाँ विषयी हैं, ये विषय को ग्रहण करती हैं। ये विषय हैं- पंच तन्मात्राएँ। चेतना ज्ञान प्राप्त करना चाहती है और चित्त उसका माध्यम बनता है। विषय अधिक होने पर चित्त उसमें भटक जाता है और यह ज्ञान इन्द्रियों से प्राप्त होता है। जब इन्द्रियाँ विषयों को छोड़कर विपरीत दिशा में मुड़ती हैं तो प्रत्याहार होता है। अर्थात् इन्द्रियों की बहिर्मुखता का अंतर्मुख होना ही प्रत्याहार है। योग के उच्च अंगों के लिए अर्थात् धारणा, ध्यान तथा समाधि के लिए प्रत्याहार का होना आवश्यक है।

प्रत्याहार की परिभाषा

महर्षि पतंजलि प्रत्याहार के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहते हैं
:- स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः॥
पातंजल योग सूत्र 2/54

अर्थात् अपने विषयों के संबंध से रहित होने पर इंद्रियों का जो चित्त के स्वरूप में तदाकार सा हो जाता है, वह प्रत्याहार है।



6.धारणा

धारणा मन की एकाग्रता है, एक बिन्दु, एक वस्तु या एक स्थान पर मन की सजगता को अविचल बनाए रखने की क्षमता है। “योग में धारणा का अर्थ होता है मन को किसी एक बिन्दु पर लगाए रखना, टिकाए रखना। किसी एक बिन्दु पर मन को लगाए रखना ही धारणा है। धारणा शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के ‘धृ’ धातु से हुई है जिसका अर्थ होता है- आधार, नींव।” धारणा अर्थात् ध्यान की नींव, ध्यान की आधारशिला। धारणा परिपक्व होने पर ही ध्यान में प्रवेश मिलता है।

धारणा की परिभाषा

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्-पंचभूतमये देहे भूतेष्वेतेषु वंचषु। मनसो धारणं एतद युक्तस्य च यमादिभिः।

अर्थात् चित्त का निश्चलीकरण भाव होना ही धारणा है। शरीरगत पंचमहाभूतों में मनोधारण रूप धारणा भवसागर को पार कराने वाली है। योगतत्वोपनिषद् (69/72)- पंचज्ञानेन्द्रियों के विषय में ब्रह्म या आत्मा की भावना होना ही धारणा है। दर्शनोपनिषद्- शरीरगत पंचभूतांश का बाह्य पंचभूतों में धारण करना ही यथार्थ धारणा है। तेजोबिन्दूपनिषद्- मन के विषयों में ब्रह्मभाव का अवस्थित होना ही धारणा है।

कठोपनिषद्- तां योगमिति मन्यते स्थिरामिन्द्रिय धारणम्। 2/3/11

अर्थात् मन और इंद्रियों का दृढ़ नियंत्रण ही धारणा योग है।

वसिष्ठ संहिता- इसमें धारणा की चार परिभाषाएँ दी गयी हैं। अर्थात् योगशास्त्र के ज्ञाता योगी लोग यम आदि गुणों से युक्त अपने में मन की स्थिरता को धारणा कहते हैं। अन्य तीन परिभाषाओं में क्रमशः एक में बाह्याकाश एवं अंतराकाश का हृदय में चिंतन करने को धारणा कहा गया है। एक में पंचमहाभूतों का बीज मंत्रों के साथ और एक में पांच देवताओं का चिंतन करना धारणा कहा गया है।

7.ध्यान

ध्यान शब्द की व्युत्पत्ति ध्यैयितायाम् धातु से हुई है। इसका तात्पर्य है चिंतन करना। लेकिन यहाँ ध्यान का अर्थ चित्त को एकाग्र करना उसे एक लक्ष्य पर स्थिर करना है। अतः, किसी विषय वस्तु पर एकाग्रता या 'चिंतन की क्रिया' ध्यान कहलाती है। यह एक मानसिक प्रक्रिया है जिसके अनुसार किसी वस्तु की स्थापना अपने मनःक्षेत्र में की जाती है। फलस्वरूप मानसिक शक्तियों का एक स्थान पर केन्द्रीकरण होने लगता है। यही ध्यान है। महर्षि पतंजलि कहते हैं-

तत्र प्रत्यैकतानताध्यानम्॥ पातंजल योग सूत्र 3/2

अर्थात् पूर्वोक्त धारणा वाली वस्तु पर तैल धारावत् मन का एकाग्र हो जाना, ठहर जाना ही ध्यान है। अर्थात् धारणा वाले स्थान या ध्येय की एक ही तरह की वृत्ति का प्रवाह गतिशील होना, उसके मध्य में किसी भी वृत्ति का न उठना ही ध्यान है।

ध्यान की परिभाषा:-

महर्षि व्यास के अनुसार- उन देशों में ध्येय जो आत्मा उस आलम्बन की और चित्त की एकतानता अर्थात् आत्मा चित्त से भिन्न न रहे और चित्त आत्मा से पृथक् न रहे उसका नाम है सटश प्रवाहा जब चित्त चेतन से ही युक्त रहे, कोई पदार्थान्तर न रहे तब समझना कि ध्यान ठीक हुआ।

सांख्य सूत्र के अनुसार- ध्यानं निर्विषयं मनः॥ 6/25 अर्थात् मन का विषय रहित हो जाना ही ध्यान है।

आदिशंकराचार्य के अनुसार –अचिन्तैव परं ध्यानम्॥ अर्थात् किसी भी वस्तु पर विचार न करना ध्यान है।

8.समाधि

स्मृति परिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ।

॥ पतंजलि योगसूत्र १.४३ ॥

स्मृति के सब प्रकार से शुद्ध हो जाने पर जब वह स्मृति अपने मूल स्वरूप शून्य के अर्थ में परिणत हो जाती है, तो उस अवस्था में नाम, रूप, ज्ञान तीनों ही नहीं रहते, इसे ही निर्वितर्क समाधि कहते हैं । इसमें साधक स्वयं ब्रह्मरूप ही बन जाता है अतः उसे तत्परायण कहते हैं । इस निर्विकल्प समाधि का फल, जो कि निर्बीज समाधि है वही वास्तव में ब्रह्म की प्राप्ति है । इसे समापत्ति कहते हैं । इस अवस्था में पहुंचे हुए पुरुष को ब्रह्मवेत्ता कहते हैं । ऐसे महात्मा के अंतःकरण में यह सारा संसार स्वप्नवत भासित होता है ।

A silhouette of a person in a yoga pose, specifically the Tree Pose (Vrikshasana), is centered against a background of a sunset or sunrise. The sky is filled with warm, orange and yellow hues, and the sun is visible as a bright, glowing orb behind the person's torso. The person's arms are raised, with hands joined in a prayer position (Anjali Mudra) above their head. The overall scene conveys a sense of peace, balance, and mindfulness.

धन्यवाद

(डा०एन०के०बाजपेयी)